
प्रवचन नं. ८९ गाथा ३१ दिनाङ्क २२-०९-१९७८ शुक्रवार
भाद्र कृष्ण ६, वीर निर्वाण संवत् २५०४

अब, (तीर्थंकर-केवली की) निश्चय स्तुति कहते हैं।.... हिन्दी है। यह लोग आये हैं न! क्या कहते हैं? कि नगर का वर्णन करने से राजा का वर्णन नहीं होता, वैसे ही शरीर का वर्णन, अतिशय का वर्णन-इसके वर्णन से आत्मा का वर्णन नहीं होता। अरे! यहाँ तो वहाँ तक कहा है कि अपने से भिन्न भगवान तीर्थंकर हो या सर्वज्ञ हो या पंच परमेष्ठी हो, वे अपने आत्मा की अपेक्षा से अनात्मा-परद्रव्य है। आहाहा! उनकी स्तुति, वह व्यवहारस्तुति है, पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? तो तीर्थंकर और केवली की वास्तविक स्तुति किसे कहते हैं? तो उसके उत्तर में ऐसा कहा है। है?

उसमें पहले ज्ञेय-ज्ञायक के संकरदोष का परिहार करके स्तुति करते हैं — क्या कहते हैं? आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञायक है और यह इन्द्रियाँ जो जड़ हैं, वे ज्ञेय हैं, पर हैं; वैसे ही अन्दर जो भावेन्द्रिय है, वह भी ज्ञेय है, पर है। वैसे ही देव-शास्त्र-गुरु या उनकी वाणी भी परज्ञेय है, वह भी इन्द्रिय है। जैसे यह जड़ इन्द्रियाँ हैं, वैसे अन्दर भावेन्द्रिय एक-एक विषय को-ज्ञान को खण्ड-खण्ड बतलानेवाली और इन्द्रिय का विषय — चाहे तो स्त्री, कुटुम्ब परिवार हो; चाहे तो देव-शास्त्र-गुरु हो, वे सब परद्रव्य है, इन्द्रिय है। वह इन्द्रिय, परद्रव्य है। इन्द्रिय कहो या परद्रव्य कहो — जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय का विषय... आहाहा! चाहे तो तीन लोक के नाथ भगवान समवसरण में विराजमान हों, वे भी इन्द्रिय का विषय होने से इन्द्रिय है। ऐसी बात है प्रभु! आहाहा!

यह सब ज्ञेय है और तुम ज्ञायक हो, दोनों की एकता संकर दोष है। द्रव्येन्द्रिय मैं

हूँ, भावेन्द्रिय मैं हूँ और भगवान की वाणी तथा भगवान यह मैं हूँ। आहाहा! तो उसमें, आहाहा! ज्ञेय और ज्ञायक को संकर बनाया। संकर का अर्थ खिचड़ा बनाया। समझ में आया? आहा! ऐसी बातें हैं, बापू! बहुत सूक्ष्म-बारीक बातें हैं।

यह ज्ञेय — जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय का विषय — चाहे तो तीन लोक के नाथ की वाणी और भगवान, इनको यहाँ तो इन्द्रिय कहा गया है। पाठ में तो इतना है कि **इंदिये जिणित्ता** — तब वे कितने ही विद्वान अभी कहते हैं — विद्वानों ने टीका दुरुह कर डाली है, क्योंकि यह इन्द्रियों को जीतना इतना था। अरे प्रभु! परन्तु इन्द्रियों को जीतने का अर्थ ही यह है।

श्रोता : इन्द्रियों को जीता किस प्रकार जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे लोग ऐसा कहते हैं कि यह भाषा में सादी बात थी, इन्द्रियों को जीतना; और इन अर्थकार ने-टीकाकार ने दुरुह कर दिया कि इन्द्रियाँ जड़, भावेन्द्रियाँ और भगवान की वाणी और भगवान वे भी इन्द्रिय, यहाँ तक ले गये टीकाकार। यह तो गम्भीररूप से पाठ पढ़ा है, उसमें अन्दर क्या भाव है, उसकी टीका (करके) स्पष्ट किया है तो उन लोगों को यह दुरुह लगता है। आहाहा! इन्द्रिय? वीतराग की वाणी सुनें, भगवान साक्षात् विराजते हैं — ऐसा देखे, वह इन्द्रिय? इन्द्रिय का विषय इन्द्रिय। बापू! बहुत कठिन बात भाई, आहाहा!

इन ज्ञेय और ज्ञायक, दोनों की एकत्वपने की बुद्धि संयोगबुद्धि, संकरबुद्धि, पर के साथ सम्बन्ध बुद्धि, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! सूक्ष्म बात प्रभु! मार्ग ऐसा बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! यह भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप प्रभु और इसके अलावा यह द्रव्येन्द्रिय आदि और भगवान आदि को भी इन्द्रिय कहा — ज्ञेयरूप इन्द्रिय कहा। आहाहा! भगवान आत्मा अनीन्द्रिय ज्ञायकप्रभु अन्दर... आहाहा! उस अनीन्द्रिय की अपेक्षा से भगवान और भगवान की वाणी को भी इन्द्रिय कह दिया है। आहाहा! बालचन्दजी! (यहाँ तो) ऐसी बातें हैं, क्या हो? उन लोगों ने ऐसा कहा है, अभी आया था कि टीकाकार ने दुरुह कर दिया है। उन विद्यानन्दजी ने समयसार बनाया (छपाया) है। ***अमथी*** भाषा में साधारण किया है। अरे बापू! यह कोई विद्वत्ता का चीज नहीं है। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा अपना

ज्ञायकस्वभाव, इस अपेक्षा से उसके अलावा जितनी चीज है, उन सबको इन्द्रिय कहा गया है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, उसके अलावा दूसरी सब चीज अजीव है। यह जीव नहीं, इसलिए अजीव है। आहाहा!

भगवान का-तीन लोक के नाथ का आत्मा तो इस जीव-ज्ञायक की अपेक्षा से वह अ-जीव है। जीव नहीं, यह जीव नहीं, इसलिए (अजीव है)। सुमेरुचन्दजी! कठिन बातें! आज छोटे भाई को साथ लाये हैं। आहाहा! भाई! अनन्त काल में इसने वास्तविक तत्त्व दृष्टि में नहीं लिया। आहाहा! यह ज्ञेय और ज्ञायक, आया? संकरदोष.... संकरदोष का अर्थ दोनों का एकत्व, दो के सम्बन्ध का एकपना, संयोग सम्बन्ध, संकर सम्बन्ध, आहाहा! दोनों की एकता की मान्यता के दोष का यहाँ निराकरण करते हैं। आहाहा! है? ऐसा कहकर स्तुति करते हैं-तीर्थंकर केवली की स्तुति। भाषा ऐसी है परन्तु इस तीर्थंकर केवली की स्तुति का अर्थ — अपना आत्मा जो ज्ञायकस्वरूप पूर्णानन्द है, उसमें एकाग्र होना यह तीर्थंकर और केवली की स्तुति है। आहाहा! ऐसी बात जगत-समाज को कठिन पड़ती है, क्या हो? आहाहा! संकरदोष का परिहार करके तीर्थंकर केवली की सच्ची स्तुति — ऐसा है न, भाई-बाबूभाई? तो तीर्थंकर केवली तो पर है और यहाँ बात करेंगे आत्मा की। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! उसके सन्मुख होकर उसमें एकाग्रता करना, वह तीर्थंकर और केवली की स्तुति कही जाती है। आहाहा! समझ में आया? यह बात यहाँ करेंगे। है? **संकरदोष का परिहार करके....** किसकी स्तुति? **तीर्थंकर-केवली....** तीर्थंकर-केवली अर्थात्? आत्मा की। आहाहा! गाथा —

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू।।३१।।

नीचे हरिगीत —

कर इन्द्रिजय ज्ञान स्वभाव रु, अधिक जाने आत्म को।
निश्चयविषैं स्थित साधुजन, भाषैं जितेन्द्रिय उन्हीं को॥३१॥

शब्दार्थ - गाथार्थ लेते हैं। यह तो १९ वीं बार पढ़ा जा रहा है। अठारह बार तो पूरा समयसार सभा में पढ़ा गया है।

श्रोता : १९ वीं बार में अलग प्रकार से पढ़ा जा रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : १९ में ९ आया न?

श्रोता : नहीं बदले ऐसा एकड़ा और फिर ९, आत्मा कभी नहीं बदले ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। आहाहा!

गाथार्थ, सूक्ष्म है भाई! यह गाथा ही ठीक आये हैं, ठीक अनुकूल में। आहाहा! गाथा ऐसी है। **जो इन्द्रियों को जीतकर....** उसका अर्थ तीन-इन्द्रिय का अर्थ तीन — द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, और भगवान देव-शास्त्र-गुरु, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब इन्द्रिय। आहाहा! उसको जीतकर अथवा उस ओर का आश्रय और लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! **'ज्ञानस्वभावाधिकं'** ज्ञानस्वभावी, भगवान आत्मा वह पर से पृथक् — अधिक भिन्न परिपूर्ण... आहाहा! क्या कहा? इन्द्रियों को जीतकर... बहुत संक्षिप्त में परन्तु बहुत गम्भीर कहेंगे। टीका आयेगी। यह जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय जो एक-एक विषय को खण्ड-खण्ड ज्ञान बतावे और देश, कुटुम्ब, स्त्री, परिवार, इज्जत, पैसा, देव-गुरु और शास्त्र — यहाँ तो सब को इन्द्रिय कहा है। समझ में आया? आहाहा!

उसको जीतकर, अर्थात् उससे भेद करके। आहाहा! **'ज्ञानस्वभावाधिकं'....** भगवान आत्मा-ज्ञानस्वभाव से परज्ञेय से भिन्न, अधिक पृथक् परिपूर्ण, आहाहा! **ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक....** आहाहा! अन्य द्रव्य से पृथक; भगवान और भगवान की वाणी से भी प्रभु पृथक्, आहाहा! **आत्मा को जानते हैं....** अपने भगवान को अन्य द्रव्य से भिन्न / अधिक / पृथक् अपने परिपूर्ण आत्मा को जानते हैं, अनुभव करते हैं, वेदन करते हैं, मानते हैं, जानते हैं, वेदन करते हैं। आहाहा!

समयसार तो अलौकिक चीज है, बापू! यह तो साक्षात् तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की वाणी है। आहाहा!

श्रोता : जगत की तीसरी आँख!

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्वितीय चक्षु, अजोड़ चक्षु, आहाहा! भगवान अद्वितीय चक्षु... यह तो शब्द है, यह तो इन्द्रिय है। यह इन्द्रिय है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! उससे

भी भिन्न, आहाहा! ज्ञायकस्वभाव... अधिक अर्थात् ज्ञेय से भिन्न और अकेला ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण-उसे जो अन्तर में अनुभव करते हैं, मानते हैं, जानते हैं, उन्हें जितेन्द्रिय कहा जाता है। उसने इन्द्रियों को जीता। ऐसे इन्द्रियों को जीतना कि कान बन्द रखना, आँखें ऐसे बन्द की है, (वह कोई जीतना नहीं है)। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा को जानते हैं उन्हें, जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं.... निश्चयनय में जो स्थित साधु हैं, **वे वास्तव में जितेन्द्रिय कहते हैं।** उस जीव को जितेन्द्रिय, धर्मी समकिती कहते हैं। आहाहा! निश्चय में स्थित सन्त, जो कोई ज्ञेय को अपने ज्ञायक से भिन्न ज्ञेय बनाकर अपने आत्मा का अनुभव करते हैं, उन्हें निश्चयनय में स्थित सन्त जितेन्द्रिय कहते हैं। आहाहा! ऐसी भाषा भी कठिन पड़ती है। आहाहा! समझ में आया?

टीका : द्रव्येन्द्रिय.... है भाई टीका? इस शरीरपरिणाम को प्राप्त जड़ यह पाँच इन्द्रियाँ हैं, शरीर का परिणाम-पर्याय, शरीर के परिणाम को प्राप्त जड़ इन्द्रियाँ, आहाहा! आयेगा टीका में। भावेन्द्रियाँ जो एक-एक ज्ञान को विषय, एक-एक इन्द्रिय एक-एक विषय को खण्ड-खण्ड बतलाती है, वह भावेन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयभूत-इन्द्रियों के विषयभूत.... आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश, देव, गुरु और शास्त्र, ये सब इन्द्रियों के विषय हैं। आहाहा! उन्हें, आहाहा! पदार्थों को — तीनों को, तीन आये न? द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उसका विषय। विषय शब्द से (आशय) पदार्थ। आहाहा! **तीनों को अपने से अलग करके....** आहाहा! **समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्न....** समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्न-द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय इन तीनों ज्ञेय को.... अपना ज्ञायकभाव (को) पर से भिन्न करके और भगवान की वाणी आदि अन्य द्रव्य, उनसे भिन्न, उनसे भिन्न, आहाहा! **अपने आत्मा का अनुभव करते हैं....** अपने आत्मा का; भगवान का आत्मा नहीं। आहाहा! **अपने आत्मा का अनुभव करते हैं, वे मुनि निश्चय से जितेन्द्रिय हैं।)....** उसे जितेन्द्रिय कहा जाता है। आहाहा!

अब स्पष्टीकरण। **अनादि....** इसका अर्थ अमर्याद किया है। दो शब्द नहीं हैं, टीका में एक ही शब्द है **निरवधि....** निरवधि। अनादि-मर्यादारहित काल में, आहाहा! **बंधपर्याय के वश....** राग, कर्म और निमित्त के वश; निमित्त से नहीं परन्तु निमित्त के

वश। समझ में आया? अनादि अमर्यादित, यह 'अनादि' का अर्थ किया। मर्यादारहित काल — अनादि। **बंधपर्याय के वश....** आहाहा! रागादि परवस्तु जो बन्ध, उसके वश हुआ जीव, **जिसमें समस्त स्व-पर का विभाग अस्त हो गया है....** जिसमें अपना स्वरूप और राग और परद्रव्य दोनों को एक मानकर स्व-पर की भिन्नता अस्त हो गयी है। स्व-पर की एकता करके स्व-पर की भिन्नता अस्त हो गयी है। अस्त हो गयी है। आहाहा! अस्त हो गयी अर्थात् दोनों की भिन्नता नहीं रही। ज्ञायक, ज्ञायकरूप और इद्रियाँ पर यह जो भिन्न है — ऐसा नहीं रहा। दो की एकता के वश भिन्नता अस्त हो गयी, भिन्नता अस्त हो गयी। आहाहा! यह तो अलौकिक है भाई! आहाहा! यह तो दिगम्बर सन्त और जैनदर्शन सर्वज्ञ का कथित यह तत्त्व है, बापू! आहाहा!

विभाग अस्त हो गया है.... क्या कहा? एक ओर ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द प्रभु चैतन्यविलासी आनन्द का नाथ प्रभु और एक ओर शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव, गुरु दोनों स्व-पर भिन्न हैं; यह अनादि राग के वश होकर भिन्नता अस्त हो गयी है, भिन्नता अस्त हो गयी है; एकता प्रगट हो गयी है। आहाहा! यह देव भी मेरे हैं, गुरु मेरे हैं।

श्रोता : दोनों की एकता हो गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकता है। कठिन काम है, प्रभु! क्या हो? वे ज्ञेय में जाते हैं — देव-सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ और गुरु-निर्ग्रन्थ मुनि दिगम्बर सन्त और शास्त्र-भगवान द्वारा कथित परमागम, आहाहा! यह परवस्तु और स्व-आत्मा, इनकी भिन्नता, राग के वश होकर दोनों की भिन्नता अस्त हो गयी है, अस्त हो गयी है। भिन्नता उसके पास नहीं रही। सूक्ष्म है, बालचन्दजी! आहाहा! है? स्व-पर का विभाग, स्व-पर का विभाग — स्व ज्ञायक और पर रागादि, देव-गुरु-आदि। स्व-पर का विभाग — स्व-पर की भिन्नता अस्त हो गयी है। **(अर्थात् जो आत्मा के साथ ऐसी एकमेक हो रही है कि भेद दिखायी नहीं देता)....** आहाहा! समझ में आया? उसमें लेंगे, निकटता, ग्राह्य-ग्राहक में है न भाई? वहाँ निकटता, वहाँ भी निकटता ली है न भाई! २९४ (गाथा में) चैत्य-चेतक की अत्यन्त निकटता, यह पाठ वहाँ है। भगवान आत्मा चेतक-जाननेवाला और

राग, देव-गुरु-शास्त्र आदि वह चैत्य है — ज्ञात होने योग्य है। जाननेवाला भगवान और वे जानने‌योग्य। आहाहा! दोनों की अति निकटता के कारण, मानो ज्ञात होनेयोग्य वस्तु मेरी है — ऐसा अज्ञानी को हो गया है। आहाहा! मीठालालजी! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

आहाहा! और भान होने के बाद भी, सम्यग्दृष्टि को — ज्ञानी को इन्द्रिय का पर के आश्रय से राग होता है, ज्ञानी को भी राग होता है परन्तु वह राग अपनी ज्ञानधारा में नहीं रखते। ज्ञानधारा और रागधारा भिन्न रखते हैं। कर्मधारा-आता है न? ११० कलश? ११० कलश, आहाहा! समकिती को भी, अनुभवी को भी, अरे! सच्चे सन्त को भी... आहाहा! परइन्द्रिय के लक्ष्यवाला राग आता है। आहाहा! वह दु:ख है, आनन्द से विपरीत है। आहाहा! ऐसा ज्ञानी को आता है परन्तु पर को पररूप से जानता है। समझ में आया? वेदन में भी दु:ख आता है, वहाँ कर्मधारा कही है। आहाहा! क्षायिक समकित हो, पर से भिन्न करके अकेले ज्ञायक का अनुभव हुआ हो। अप्रतिहत क्षायिक हुआ हो, उसको भी राग आता है, वह कर्मधारा साथ में होती है और कर्मधारा का वेदन भी है। आहाहा! कठिन काम भाई! यह आत्मा का, ज्ञान का वेदन भी है, और अपूर्णदशा है, वह पूर्ण नहीं है; इसलिए राग आया, वह ज्ञेयरूप से, हों! तथापि दु:ख का वेदन है। आहाहा!

जगत् को यह बात कठिन पड़ती है! समझ में आया? भिन्न किया, भिन्न करने पर भी बाकी राग अन्दर आता है; वीतराग नहीं है, इसलिए राग आता है; साधक हुआ, अनुभव हुआ, ज्ञेय से भिन्न ज्ञायक मेरी चीज — ऐसा अनुभव में आया, तथापि जब तक वीतरागता न हो, तब तक ज्ञानी को भी राग.... राग कहो या दु:ख कहो, आहाहा! आता है। वहाँ तो — कलश ११० में कहा है न भाई? राग, दु:ख और आत्मा के भान का आनन्द एक साथ रहने में विरोध नहीं है — वहाँ लिया है ११० कलश में। मिथ्याश्रद्धा और सम्यक्‌श्रद्धा दोनों को एक साथ रहने में विरोध है। है अन्दर? है कलश? ११०, हों! देखो, यही आया है, गुजराती है — एक जीव में एक ही काल में ज्ञान और क्रिया, आहाहा! दोनों किस प्रकार हों? एक ही काल में ज्ञान और क्रिया दोनों — एक ओर ज्ञान का परिणमन

तथा एक ओर राग का परिणमन — ऐसा एक काल में कैसे हो ? है ? कलश-टीका में है। ११० कलश। ज्ञान और क्रिया दोनों एक साथ किस प्रकार हों ? प्रभु ! एक ओर आत्मा का ज्ञान और अनुभव हुआ और उस ज्ञान के आनन्द की दशा रहे और साथ में राग की क्रिया के दुःख की दशा रहे — एक साथ (रहे), कैसे रह सकते हैं ? यह कहा। समाधान — विरोध तो कुछ नहीं। आहाहा ! है ? कितने ही काल तक दोनों होते हैं। साधक है न ? साधक है, वहाँ थोड़ा बाधकपना है, राग-दुःख है; ज्ञानी को भी दुःख का वेदन है। आनन्द के साथ दोष का वेदन है। आहाहा ! है ? कितने ही काल तक दोनों साथ में रहते हैं — ऐसा वस्तु का परिणाम है परन्तु विरोधी जैसा दिखता है। पर से भिन्न ज्ञान का अनुभव और साथ में राग के दुःख का अनुभव, यह विरोध जैसा दिखता है। आहाहा ! परन्तु अपने-अपने स्वरूप से है, विरोध तो करते नहीं। आहाहा ! कितने काल तक रहेंगे ? कि जहाँ तक आत्मा मिथ्यात्वरूपी विभावपरिणाम मिटाकर और आत्मद्रव्य शुद्ध हुआ परन्तु क्रिया का त्याग भलीभाँति परिपक्वता को प्राप्त नहीं हुआ.... वह राग की क्रिया का त्याग अभी पूर्ण नहीं हुआ। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! क्रिया का मूल से विनाश नहीं हुआ; जब तक अशुद्ध परिणमन है, तब तक जीव का विभाव परिणमन है। आहाहा ! आहाहा !

बापू ! बातें-मार्ग कोई अलग है, दुनिया को हाथ नहीं आया है। समझ में आया ? एक ओर अस्त हो गया — ऐसा कहा और भान हुआ-यह कहेंगे। आहाहा !

मैं तो ज्ञायकस्वरूप, परज्ञेय की एकता से भिन्न, संकर सम्बन्ध से-संयोग सम्बन्ध से भिन्न (हूँ)। आहाहा ! मेरी चीज को पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है — ऐसा अन्तर में अनुभव-सम्यग्दर्शन हुआ। समझ में आया ? ऐसा होने पर भी, जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक साथ में राग अर्थात् दुःख की पर्याय साथ आती है और ज्ञानी को भी, आनन्द का भी वेदन और पूर्ण आनन्द नहीं तो थोड़े दुःख का भी वेदन साथ में है। सूक्ष्म बात है बापू ! मार्ग कोई अलग है। अभी तो बहुत गड़बड़ उठी है। आहाहा ! यह निर्मलानन्द नाथ, आहाहा ! इसमें पूर्ण निर्मलदशा न हो, तब तक मलिनता तो आती है। व्यवहार आता है न ? व्यवहार आता है, वह तो सब राग है, दुःख है। आहाहा ! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा

का राग, पंच महाव्रत के परिणाम का राग, अरे! शास्त्र के पठन का राग, वह राग होता है परन्तु है दु:खरूप। आहाहा!

जगत को ऐसी बात कठिन पड़ती है परन्तु क्या हो? भाई! मार्ग तो यह है। आहा! यह जन्म-मरणरहित, बापू! चौरासी के अवतार कर-करके — कुत्ते के, कौवे के, वनस्पति के, आहाहा! यह नरक के भव, प्रभु ऐसा कहते हैं, इस नरक की वेदना, नाथ! एक क्षण तूने वेदन की उसे, करोड़ों वर्ष की तो क्या बात कहें? एक क्षण की वेदना करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से नहीं कही जा सकती, प्रभु! इतनी वेदना तू भूल गया है प्रभु! नाथ! नरक के अन्दर ३३-३३ सागर की स्थिति में अनन्त बार गया प्रभु! उसमें परमात्मा ऐसा कहते हैं प्रभु! तेरी एक क्षण की वेदना.... आहाहा! उस दु:ख की व्याख्या करने पर करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से नहीं कहा जा सकता, प्रभु! ऐसा दु:ख तूने वेदन किया है। समझ में आया? आहाहा! अरे! जाग रे नाथ जाग!! उसमें-रमेश में (घाटकोपर भजन मण्डली) में आता है — 'दुखडा सह्या न जाय और अब जाग कर जो तू जीव' — आता है। रमेश का (भजन) आहाहा! यहाँ यह कहते हैं — जितनी पर के साथ एकत्वबुद्धि, वह दु:ख और एकत्वबुद्धि जाने के बाद भी जितनी अस्थिरता है, वह भी दु:ख है। समझ में आया? आहाहा!

जिसे उसमें ज्ञानधारा और क्रियाधारा — कर्मधारा कहा है। वह कर्म की अर्थात् राग का परिपूर्ण त्याग जब तक न हो, राग की परिणति का परिपूर्ण त्याग जब तक न हो, तब तक राग और ज्ञानक्रिया एक साथ रहने में विरोध है नहीं। हैं दोनों विरुद्ध — आनन्द की दशा और राग की दु:ख की दशा हैं तो दोनों विरुद्ध, परन्तु एक साथ रहने में विरोध नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

श्रोता : दु:ख है, उसे ज्ञान का ज्ञेय मानें तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : मात्र दु:ख है — ऐसा न माने तो मिथ्याभ्रम अज्ञान है। दु:ख है न? ज्ञान का निश्चय से ज्ञेय है परन्तु वेदन की अपेक्षा से वेदते हैं। आहाहा! ज्ञान की अपेक्षा से ज्ञेय, श्रद्धा की अपेक्षा से हेय, चारित्र की अपेक्षा से वेदन। बापू! ऐसा मार्ग है भाई! आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। आहा!

(जो आत्मा के साथ ऐसी एकमेक हो रही है कि भेद दिखायी नहीं देता).... द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उनके विषय-पर, ये दोनों मानों एक हों, आहाहा! ऐसा भेद दिखायी नहीं देता। अज्ञानी को अनादि से एकरूप दिखायी देता है। आहाहा!

अब इसका स्पष्टीकरण। आहा! अब इन्द्रिय की व्याख्या — **अनादि बंधपर्याय के वश जिसमें समस्त....** आ गया न? **(भेद दिखायी नहीं देता) ऐसी शरीर परिणाम को प्राप्त....** क्या? यह... यह... यह... शरीरपरिणाम पर्याय है। जड़ इन्द्रिय शरीर की पर्याय है। शरीर के परिणाम को प्राप्त द्रव्य इन्द्रियाँ हैं। भाषा तो सादी है, पकड़ में आये ऐसा है। आहाहा! इस शरीर परिणाम को प्राप्त जड़-द्रव्येन्द्रियाँ; फिर भावेन्द्रियाँ लेंगे। शरीर परिणाम (अर्थात्) शरीर की पर्याय। आहाहा! यह जड़ इन्द्रियाँ, शरीर की पर्याय है; यह आत्मा की पर्याय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **प्राप्त द्रव्येन्द्रियों को....** शरीर परिणाम को प्राप्त — शरीर की पर्याय को प्राप्त.... ये पाँचों ही इन्द्रियाँ, जड़ इन्द्रियाँ शरीर की पर्याय है। आहाहा!

(शरीर परिणाम को प्राप्त द्रव्येन्द्रियों) को तो निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता से.... क्या कहते हैं अब? निर्मल भेद अभ्यास... आहाहा! इस जड़ शरीर की पर्याय को प्राप्त (द्रव्येन्द्रियों) से भेद अभ्यास, निर्मल भेद अभ्यास। जरा क्या कहते हैं? शास्त्र-अभ्यास नहीं; भेद अभ्यास; और वह भी निर्मल भेद अभ्यास अर्थात्? इसे धारणा में यह बात आ जाये कि यह इन्द्रियाँ पर हैं, यह पर, यह भेद अभ्यास नहीं। समझ में आया? आहाहा! इसके ख्याल में आवे कि यह शास्त्र या यह द्रव्येन्द्रिय आत्मा से पर है परन्तु यह भेद अभ्यास नहीं। आहाहा! यह तो शास्त्र अभ्यास है। आहाहा! और शास्त्र का ज्ञान, वह भी शब्द का ज्ञान हुआ। आहाहा! इस कारण 'निर्मल भेद अभ्यास' — यह शब्द पड़ा है। शरीर परिणाम को प्राप्त, इससे भिन्न अन्दर में निर्मल भेद अभ्यास.... पर का लक्ष्य छोड़कर और अन्तर के लक्ष्य में जाना। आहाहा! आहा! निर्मल भेद अभ्यास। निर्मल शास्त्र अभ्यास — ऐसा नहीं। आहाहा! एक बात। **निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता....** उसमें चतुराई, कौशल्य। कौशल्य शब्द पड़ा है न भाई, संस्कृत में? आहाहा! चतुर मनुष्य — ऐसा कौशल्य। इन्द्रिय से भिन्न अभ्यास में — निर्मल भेद के अभ्यास में प्रवीण। आहाहा!

द्रव्य इन्द्रिय से — शरीर परिणाम को प्राप्त पर्याय को, शरीर की पर्याय है — यह

द्रव्येन्द्रिय.... इससे निर्मल भेद अभ्यास से प्रवीणता, चतुरपना। आहाहा! इसे आत्मा को देह की पर्याय से भिन्न करना, आहाहा! यह तो अभी स्थूल है, भावेन्द्रिय का सूक्ष्म है। आहा! **निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता से.... शरीर परिणाम को प्राप्त द्रव्येन्द्रियों को तो निर्मल भेदाभ्यास....** यह अभ्यास करना — ऐसा कहते हैं। निर्मल भेदज्ञान का अभ्यास। आहाहा! भेद अभ्यास की प्रवीणता, चतुराई, कौशल्य से प्राप्त — भेदविज्ञान की कौशल्यता से प्राप्त.... अन्दर भगवान आत्मा। आहाहा! ऐसा काम बहुत....

अन्तरंग में क्या प्राप्त? **निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता से प्राप्त....** क्या? **अन्तरंग में प्रगट....** यह शरीर परिणाम है, वह तो बाह्य रहा। अब इससे भिन्न करने का अभ्यास करने पर, आहाहा! **अन्तरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म....** आहाहा! अन्तरंग में प्रगट/व्यक्त परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा, आहाहा! अतिसूक्ष्म — विकल्प से भी पार। आहाहा! गाथा सूक्ष्म-अच्छी आ गयी है। तुम आये न ठीक मांगलिक है। भाग्य हो तो ऐसा मिले बिना नहीं रहता। आहाहा! ऐसी बात...

श्रोता : यह तो पूर्व का याद किया, वर्तमान में क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान में उसे भिन्न करना यह, भेद अभ्यास करना। एकत्व की बुद्धि है, उसमें भेद का अभ्यास करना। आहाहा!

वह तो पुद्गल की, जड़ की पर्याय है। परिणाम कहा न? शरीर परिणाम को प्राप्त — पुद्गल की पर्याय को प्राप्त; उसे निर्मल भेदज्ञान के अभ्यास से, **भेदाभ्यास की प्रवीणता से प्राप्त....** अब अन्दर... शरीर परिणाम को प्राप्त, उसे निर्मल भेद अभ्यास की प्रवीणता से प्राप्त। आहाहा! कैसे प्राप्त हो? - उसकी विधि कही। आहाहा! **अन्तरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव....** आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वभाव, चैतन्य, ज्ञायक, आनन्द ज्ञानरसस्वभाव त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, आहाहा! अन्तरंग में अतिसूक्ष्म प्रगट है। आहाहा! जैसे शरीर के परिणाम को प्राप्त बाह्य प्रगट है, आहाहा! वैसे भगवान आत्मा अन्तरंग में प्रगट है। आहाहा! निर्मल भेद अभ्यास, बापू! यह तो मन्त्र हैं, यह कोई कथा नहीं। आहाहा! यह तो जहर उतारने के (मन्त्र हैं)। सर्प का जहर चढ़ता है न? मन्त्र उतारते हैं। बिच्छू का.... यह मिथ्यात्व के जहर उतारने के मन्त्र हैं। यह कोई इसका शब्द से पार पड़े ऐसा नहीं है। आहाहा! शरीर परिणाम को प्राप्त, (द्रव्येन्द्रियों को) **निर्मल भेदाभ्यास**

की प्रवीणता से प्राप्त.... आहाहा! **अन्तरंग में प्रगट....** वे शरीर के परिणाम वह बाह्य थे, वे तो जड़ थे। अब अन्तरंग में भगवान, निर्मल भेद अभ्यास की चतुराई से कि यह तो यह इन्द्रिय नहीं; यह तो आत्मा आनन्द है, ज्ञानस्वरूप है — ऐसी चतुराई से.... आहाहा! **अन्तरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म....** जो दया-दान का विकल्प है, वह तो स्थूल है; उससे तो प्रभु अन्दर भिन्न है। आहाहा! **अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव....** जाननस्वभाव अन्तरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म... आहाहा! टीका, यह भी टीका है न! आहाहा! निर्मल भेद अभ्यास, अर्थात् अकेली धारणा कर रखी हो ऐसा नहीं — ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञान में धारणा कर रखी हो कि जड़ इन्द्रियाँ पर है और आत्मा पर (भिन्न) है, यह निर्मल भेदज्ञान नहीं; यह तो धारणा की बात हुई। आहाहा! **निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता से प्राप्त....** आहाहा! **अन्तरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल से....** चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल से **द्रव्य इन्द्रियों को पृथक् किया।** आहाहा!

बात क्रमशः कहेंगे। द्रव्येन्द्रियाँ और भावेन्द्रियाँ (की बात क्रमशः कहेंगे) परन्तु होता तो एक साथ है। समझाने में तो क्रम पड़ता है। आहाहा! द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय से भिन्न होने का समय तो एक ही है। पहले द्रव्येन्द्रिय से अलग पड़ता है और फिर भावेन्द्रिय से — ऐसा कुछ नहीं है। समझाने की शैली तो क्या करे? आहाहा!

अवलम्बन के बल से.... 'अति' अन्तरंग में अस्तिरूप-व्यक्तरूप प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के आधार से, अवलम्बन के बल से **सर्वथा अपने से अलग किया;....** आहाहा! अलग करने की विधि यह है। चैतन्य-प्रगट सूक्ष्म स्वभाव से — उसके अवलम्बन के बल से, आहाहा! द्रव्येन्द्रियाँ अलग हो गयीं। द्रव्येन्द्रियाँ अलग की ऐसा कहा जाता है। उसे करता हूँ — ऐसा वहाँ नहीं है परन्तु इसे समझाना किस तरह? अन्तरंग में भेद अभ्यास के बल से प्राप्त जो अन्तरंग में अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल से-प्राप्त हो गया आत्मा। उसने द्रव्येन्द्रियाँ जीत लीं, उसने द्रव्येन्द्रिय को जीता — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप! अब लोगों को ऐसा लगता है, ये सोनगढ़िया निश्चयाभास है — ऐसा कहते हैं। कहो बापू! कहो, प्रभु! ऐसे अकेले निश्चय की बातें, व्यवहार की बातें नहीं आतीं?

श्रोता : मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि निश्चय अर्थात् वास्तविक।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय अर्थात् सत्य और व्यवहार तो उपचारित है, आहाहा! तथापि व्यवहार आता है, यह तो कहते हैं। कहा न? आहाहा! जब तक पूर्ण वीतराग न हो, जब तक यथाख्यातचारित्र न हो, तब तक ज्ञानी को, समकिती को, अनुभवी को भी रागधारा, दु:खधारा.... आहाहा! एक साथ रहती है। आहाहा! परन्तु एकत्व हो, वहाँ दो धारा कहाँ रही? वहाँ तो अकेली अज्ञानधारा — रागधारा रही है। यह तो भिन्न पड़ा है, भिन्न करके अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल से द्रव्येन्द्रियाँ पृथक् की हैं। पृथक् की कहा जाता है, तब तो ज्ञानधारा उत्पन्न हुई और जब अपूर्णता है, राग आता है, व्यवहार आता है, उसको व्यवहार कहो, राग कहो, दु:ख कहो, आहाहा! समझ में आया?

बारहवीं गाथा में कहा है न, व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान... ग्यारहवीं गाथा में कहा अकेला भगवान भूतार्थ, सत्यार्थ प्रभु अतिसूक्ष्म वस्तु का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन होता है, फिर उसकी पर्याय में कुछ है या नहीं? क्योंकि पर्याय में कमजोरी है, इतना राग है और अपूर्ण शुद्धता है, वह शुद्धता अपूर्ण और कमजोरी का राग है, उसे उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। समझ में आया? और ११० कलश में ऐसा कहा — उसे राग की धारा और आनन्द की धारा वेदन में दोनों एक साथ होते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। वाद-विवाद से तो यह कुछ पार पड़े — ऐसा है नहीं।

अपने से सर्वथा.... एकान्त तो नहीं हो जाता न सर्वथा में? आहाहा! शरीर परिणाम को प्राप्त (द्रव्येन्द्रियाँ) और भगवान अतिसूक्ष्म — इस भेद के अभ्यास से प्राप्त — वह भिन्न पड़ गया। आहाहा! **सो वह द्रव्येन्द्रियों को जीतना हुआ।....** तो यह द्रव्येन्द्रियों को जीता — ऐसा कहा गया। इस प्रकार, हों! इस प्रकार इन्द्रियों को काटना और ऐसे उन सूरदास में आता है कि वैश्या को देखना नहीं, आँखें फोड़ डालना। सुना था हमने वहाँ पालेज में। यह नहीं, यहाँ तो जड़ से भिन्न अन्तरंग में एकाग्रता करके अन्तरंग में अनुभव में आना, उसने द्रव्य इन्द्रियों को जीता ऐसा कहा जाता है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)